

## नालंदा विश्वविद्यालय एवं दक्षिण-पूर्व एशिया

### सहायक आचार्य

### डॉ संजय कुमार

दीनदयाल उपाध्याय अध्ययन केंद्र  
केंद्रीय विश्वविद्यालय हिमाचल प्रदेश

### डॉ. अजय कुमार

सहायक असिस्टेंट प्रोफेसर श्याम लाल कॉलेज सांध्य

### सारांश

नालंदा विश्वविद्यालय प्राचीन भारत में विश्व का पहला आवासीय अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय था, जो 5 वीं से 12वीं शताब्दी तक भारतीय ज्ञान प्रणाली की शिक्षा का प्रमुख केन्द्र था। जिसने दक्षिण-पूर्व एशिया और अन्य दूर-दराज के क्षेत्रों से छात्रों और विद्वानों को आकर्षित किया। यह ने केवल बौद्ध अध्ययन और दर्शन शास्त्र का बल्कि चिकित्सा और गणित के साथ-साथ अन्य भारतीय बौद्धिक विषयों का ज्ञान केन्द्र था। नालंदा विश्वविद्यालय भारतीय ज्ञान प्रणाली धर्म और संस्कृति के माध्यम से चीन, कोरिया, जापान, तिब्बत और अन्य दक्षिण-पूर्व एशिया देशों में पहुंची और इन देशों के बौद्धिक और सांस्कृतिक विकास को बढ़ावा मिला। प्रस्तुत लेख नालंदा विश्वविद्यालय के अन्तर्राष्ट्रीय योगदान का सूक्ष्म अवलोकन का प्रयास है।

**परिचय ;** नालंदा महाविहार तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व से तेरहवीं शताब्दी ईस्वी तक एक मठवासी-सह-शैक्षिक संस्थान था। यह वर्तमान बिहार की राजधानी पटना के दक्षिण में लगभग 40 मील की दूरी पर आधुनिक बड़गाँव नामक ग्राम के समीप स्थित था। प्राचीन वृत्तांतों के अनुसार यह के संघराम के पास एक तालाब था, जिसके पास के नालंदा नामक नाग (सर्प) रहता था, उसी के नाम पर इस स्थान को नालंदा कहा गया। एक अन्य वृत्तांत में कहा गया है, इस स्थान पर तथागत ने प्राचीन काल में बोधिसत्व के रूप में प्राणियों की निरंतर सेवा (ना-आलम-दा) किया। इसी सद्गुण के स्मरण में इसका नाम पड़ा था। इतिहास तारानाथ के अनुसार नालंदा सारिपुत्र की जन्मभूमि थी, यहाँ उन्होंने 80,000 अर्हत्तों के साथ निर्वाण प्राप्त किया था। तारानाथ द्वारा वर्णित एक परम्परा के अनुसार नागार्जुन के समकालीन सुविष्णु ने अभिधम्म के पतन को रोकने के लिए नालंदा में 108 मंदिरों का निर्माण किया था। सम्राट अशोक ने भी यहाँ एक विशाल मंदिर बनवाया था। कई स्थानों नालंदा को पाटलीपुत्र से भी समृद्ध बताया गया है। खाद्य पदार्थों के उपलब्धता एवम सस्ता होना और गर्म जलवायु के कारण यह स्थान बौद्ध भिक्षुओं और सन्यासियों के लिए एक आदर्श स्थान था। क्योंकि यह क्षेत्र समृद्ध था, जिससे उन्हें भिक्षा मिल जाती थी और गर्म जलवायु के कारण उन्हें कम वस्त्रों की आवश्यकता रहती है। इसी कारण यह क्षेत्र भिक्षुओं और सन्यासियों के लिए एक अर्थश आश्रय स्थल बन गया था। नालंदा में प्रथम विहार (संघराम) शक्रादित्या ने बनवाया था। शक्रादित्या की पहचान कुमारगुप्त प्रथम (415-455 ई.) के रूप में की जाती है जिसकी सुप्रसिद्ध उपाधि "महेन्द्रादित्य" की थी। महेन्द्र और शक्र एक दूसरे के पर्यावाची हैं। कुमारगुप्त के उत्तराधिकारी पुत्र बुद्धगुप्त ने दक्षिण में दूसरा विहार बनवाया। बाद में तथागुप्त ने पूर्व में एक विहार बनवाया। फिर बालादित्या ने पूर्वोत्तर दिशा

में एवं ब उसके पुत्र वज्र ने पश्चिम दिशा में विहार बनवाया। सातवीं शताब्दी में सम्राट हर्ष ने भी नालन्दा एक ताम्रविहार बनवाया। हर्ष के समय तक आते-आते महाविहार एक अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त विश्वविद्यालय का रूप ले चुका था। हर्ष के बाद भी लगभग 12 वीं शताब्दी तक इसकी ख्याति बनी रही। नालन्दा में महायान तथा बौद्धधर्म के अठारह सम्प्रदायों के ग्रंथों के अतिरिक्त वेद, हेतुविद्या, शब्दविद्या, योगशास्त्र, चिकित्सा, तंत्रविद्या, सांख्य दर्शन के ग्रंथों आदि की शिक्षा व्याख्यानों के माध्यम से दी जाती थी। नालन्दा से ज्ञान-विज्ञान एवं संस्कृति का प्रसार लगभग सम्पूर्ण विश्व में हुआ। प्रस्तुत निबंध दक्षिण - पूर्वी एशियाई देशों में ज्ञान के प्रसार में नालन्दा भूमिका का अवलोकन करने हेतु है।

प्राचीन भारत में नालन्दा एक प्रमुख उच्च शिक्षा के का केन्द्र था। इसकी प्रसिद्धि का मुख्य कारण उसके योग्य विद्वानों और शिक्षकों की प्रतिष्ठा से थी। भारत के लगभग सभी क्षेत्रों से बड़ी संख्या में छात्र एवं शोधार्थी शिक्षा एवं मार्गदर्शन के लिए यहाँ आते थे। नालन्दा में विदेशी विद्वानों के आगमन इसको शिक्षा एवं प्रतिष्ठा दोनों को सकारात्मक रूप से प्रभावित किया। नालन्दा के माध्यम से भारत का अन्य दक्षिणी - पूर्वी एशियाई देशों के साथ विचारों का आदान-प्रदान से शुरु हुआ और भारतीय ज्ञान प्रणाली का प्रसार हुआ। हालकी यह प्रक्रिया हेनत्सांग और इत्सिंग के आगमन से पहले शुरु हो चुका था। बाद में इसमें बहुत तेजी आई। इत्सिंग के अनुसार, हेनत्सांग की बाद के चालीस वर्षों में चीन, मंगोलिया और कोरिया जैसे देशों से लगभग 56 विद्वानों ने भारत की यात्रा किया और जिसमें से अधिकांश नालन्दा में अध्ययन के लिए आए थे। इसमें कुछ ताम्रलिपि के रास्ते समुद्री मार्ग से आए, अन्य खेतान, तिब्बत और नेपाल के कठिन रास्ते से भारत आए थे। विदेशों से आए तीर्थयात्रियों में हेनत्सांग यात्रा करने वाले पहले व्यक्ति थे, क्योंकि की फा-हिएन ने वहाँ का वर्णन नहीं किया है।

हेनत्सांग (602-647 ई.) के यंग विहार के एक चीनी भ्रमण थे, जिसकी सन् 622 ई. में उपसंपदा हुई। सन् 629 ई. में उसने अपनी प्रसिद्ध भारत यात्रा के लिए प्रस्थान किया। बाद में हेनत्सांग ने नालन्दा में रहकर पाँच वर्ष बौद्ध साहित्य तथा ब्राह्मण साहित्य का अध्ययन किया। उसने यह सब ज्ञान आचार्य शीलभद्र के मार्गदर्शन में सीखा था। भारत के लौटते समय हेनत्सांग अपने साथ 224 सूत्र, 162 शास्त्र, स्थाविर पंथ की 15 पुस्तके, समात्य पंथ 15 पुस्तके, जिसमें सूत्र और विनय भी थे, महीशासक पंथ के 22 ग्रंथे, सर्वस्तवादिन 67 पुस्तके, काश्यप पंथ की 17 पुस्तके, धर्म गुप्त पंथ 12 पुस्तके, शब्द-विद्याशास्त्र की 13 पुस्तके, कुल 657 पुस्तके विभिन्न धर्मों एवं विविध विषयों से सम्बन्धित थी, बीस घोड़ों पर रख कर चीन ले गया। इसके वह भगवान बुद्ध की धातुओं के कुछ अवशेष और उनकी कुछ मूर्तियों को भी ले गया इसके बाद हांग-फू संघाराम में उसने इन पुस्तकों चीनी भाषा में अनुवाद किया। सन् 647 के अंत तक उसने बौद्धसत्वापतिक सूत्र, बौद्धभूमि सूत्र, शतमूरविधारणी जैसी लगभग 58 पुस्तकों का अनुवाद किया। हांग-फू के संघाराम के दक्षिण में उसने एक बौद्ध विहार बनवाया और अपना शेष जीवन बौद्ध दर्शन की शिक्षा और बौद्ध ग्रंथों के चीनी अनुवाद में लगा दिया। हेनत्सांग ने बौद्ध धर्म योगाचार दर्शन को चीन में लोकप्रिय बनाने का सफल प्रयास किया। नालन्दा से वह जो पुस्तके ले गया था उससे चीनी लोगों को तर्कशास्त्र, व्याकरण, दर्शन, खगोलगोल शास्त्र आदि का ज्ञान हुआ तथा नालन्दा के ज्ञान से ही चीन में बौद्ध धर्म समृद्धि हुआ और चीन प्रगतिशील राष्ट्र बना।

हेनत्सांग के भारत यात्रा के बाद इत्सिंग (634-713 ई) भारत आया। इत्सिंग ने 671 ई० में भारत की अपनी यात्राका शुभारंभ किया। इस समय तक भारत एवं चीन के मध्य मधुर संबंध स्थापित हो चुके थे। चीन तीर्थयात्री भारत में आया-जाया करते थे। इत्सिंग ने नालन्दा में 10 वर्ष रहकर बौद्ध- विद्या अध्ययन किया। उसने बौद्ध धर्मग्रंथों (सूत्र, शास्त्र और विनय) के 400 से अधिक खंडों का चीनी भाषण में अनुवाद किया और अपने साथ चीन ले गया। इससे चीन के बौद्ध मन में अनुशासनात्मक हेनत्सांग और इत्सिंग भारत यात्रा अन्तराल के बीच चीन, जापान और कोरिया से लगभग 57 तीर्थयात्री नालन्दा में अध्ययन के लिए आए थे।

इसमें shaman yush chiu (शामन युआन चिउ) तिब्बत रास्ते भारत आये थे। वे तीन वर्ष नालन्दा में रहे और संस्कृत भाषा, बौद्ध शास्त्र एवं योग का अध्ययन किया। सन् 664 ई. में जब पुनः नालन्दा आए तो इत्सिंग वहीं थे।

एक अन्य विद्वान ताओ-ही जिन्हें संस्कृत में श्रीदेव कहा गया है, वे भी नालन्दा आए थे, जहाँ उन्होंने महायान बौद्ध ग्रन्थों का गहन अध्ययन किया और नालन्दा में 400 से अधिक चीनी शास्त्रों एवं ग्रन्थों को रखा। इत्सिंग की यात्रा के बाद पाँच शताब्दियों तक नालन्दा विश्वविद्यालय का विकास जारी रहा। इसकी संख्या सैकड़ों में थी, किन्तु इन आंगंतुकों के बारे में हमारे पास पर्याप्त साक्ष्य नहीं है। आठवीं शताब्दी के आरंभ में नालन्दा विश्वविद्यालय के एक पंडित शुभकर सिंह राजधानी चांग आन (शीआन) पहुँचे और सुसिद्धिकाया महा-तंत्र और सुबाहु-कुमार-सूत्र का चीनी भाषा में अनुवाद किया। उन्हीं के शिष्य कूकाई ने सुसिद्धिकाया महा-तंत्र का अनुवाद जापान ले गये थे।

इसके चार वर्ष बाद वज्रबोधी हुए। इनका जन्म मध्य भारत में हुआ था। इन्होंने 16 वर्ष की आयु में बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया था। वज्रबोधी मगध के नालन्दा विश्वविद्यालय में धर्मकीर्ति के अधीन बौद्ध तर्कशास्त्र, एवं शांतिज्ञान वज्रयान की दीक्षा प्राप्त किया था। अधिकांश ज्ञात स्रोतों के अनुसार उन्होंने इंडोनेशिया एवं श्रीलंका आदि देशों में वज्रयान की शिक्षा का प्रसार किया। इसके बाद वह चीन गए कई बौद्ध ग्रन्थों का संस्कृत से चीनी भाषा में अनुवाद किया। उन्होंने कोरियाई भिक्षु होचो के शिक्षित किया जो बाद में भारत आया और अपने यात्रा वृत्तांत को चीनी भाषा में लिखा।

कुछ साक्ष्य हैं पता चलता है कि तिब्बत के राजा स्रोंग-त्सांग (srong-tsan) तिब्बत में लेखन कला का विकास के लिए बड़े उत्सुक थे। इसके लिए उन्होंने अपने मंत्री अनुल के पुत्र थोनमी (thonmi) को भारतीय भाषाओं के उद्देश्य हेतु भारत भेजा। थोनमी नालन्दा विश्वविद्यालय के आचार्य देवविद सिंह के मार्गदर्शन में ब्राह्मणों और बौद्ध के परित्र साहित्य का अध्ययन किया और इसका प्रचार-प्रसार तिब्बत में किया।

एक अन्य विद्वान दीपंकर 'श्रीज्ञान' (लगभग-982-1054) 11 वीं सदी के एक महान बंगाली बौद्ध भिक्षु, दार्शनिक और शिक्षक थे, जिन्होंने तिब्बत और सुमात्रा में महायान व वज्रयान बौद्ध धर्म के पुनरुत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। दीपंकर की आरंभिक शिक्षा विक्रमशीला महाविहार में हुई कर इसके बाद वह नालन्दा जहाँ आचार्य बौधभद्र ने उन्हें श्रामणेर की दीक्षा दी। उसके बाद वह 14 माह की यात्रा करके सुमात्रा पहुंचे। जहाँ उसने बौद्ध धर्म का प्रसार किया।

पाँचवीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों में, नालन्दा के विश्वविद्यालय के रूप में विकसित होने से ठीक पहले कुमारजीव, गुणवर्मन, परमर्थ और वसुबंधु आदि विद्वानों भारतीय ज्ञान एवं दर्शन एशिया के विभिन्न देशों प्रसार किया, वे नालन्दा क्षेत्र सम्बन्ध रखते थे। बाद में चीन की राजनीतिक परिस्थितियों के कारण भारतीय पंडितों के लिए वहाँ जाना असुरक्षित था। अतः 9वीं और 10वीं शताब्दी में बहुत कम पंडित चीन गए थे। हालाँकि, 10वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में नालन्दा विश्वविद्यालय के एक महान भारतीय पंडित, धर्मदेव ने चीन की यात्रा की। वे सोंग राजवंश (960-1127 ई.) के सबसे प्रसिद्ध अनुवादकों में से एक सिद्ध हुए। उन्हें भारतीय बौद्ध ग्रंथों के अनुवाद हेतु शाही बोर्ड का सदस्य नियुक्त किया गया। 981 ई. तक उन्होंने 46 ग्रंथों का चीनी भाषा में अनुवाद किया। चीनी बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार में उनके योगदान की सराहना करते हुए सम्राट थेइत्सुन ने उन्हें कान कियाओ-ताश की उपाधि से सम्मानित किया।

नालन्दा एक अंतरराष्ट्रीय विश्वविद्यालय था, अपने इतिहास के आरंभिक काल से ही नालन्दा विद्यार्थियों के लिए आकर्षण का केंद्र रहा है, और समय बीतने के साथ-साथ एक महान विद्या मंदिर के रूप में इसकी ख्याति दूर-दूर तक फैलती गई। न केवल भारत के विभिन्न हिस्सों में विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करने के लिए नालन्दा आने लगे, बल्कि चीन, जापान जावा, सुमात्रा और वर्मा (कामरूप) जैसे दूर देशों के राजाओं ने

भी इस संस्थान में रुचि दिखाना शुरू कर दिया। अततः नालंदा विश्वविद्यालय के कारण ही दक्षिण पूर्वी-एशिया में बौद्ध धर्म और भारतीय ज्ञान-प्रणालियों के विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

1. बापट, पी. वी., (2010), "बौद्ध धर्म के 2500 वर्ष" प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृष्ठ-149
2. कर्दम, डॉ. जयप्रकाश, (2006), "बौद्ध धर्म के आधार स्तंभ" सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ-82,
3. दास, शरत चन्द्र, (1893), "इन्डियन पंडितस इन द लैण्ड ऑफ र्नो" बैपेरिस्ट मिशन प्रेस, कलकत्ता, पृष्ठ- 47-48
4. बोस, फणीन्द्रनाथ, (1923), "द इन्डियन टीचर इन चाईना", S. GANESAN, मद्रास, पृष्ठ- 58-59
5. चट्टोपाध्याय, देवी प्रसाद. (1970), "तारानाथस हिन्ट्री ऑफ बुद्धिज्म", मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, पृष्ठ-72,
6. Beal, Samuel (1884), "SI-YU-KI. Buddhist Records of western world" Trubner's Oriental Series, London, 106
7. श्रीवास्तव, के० सी (2010) प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति" यूनाईटेड बुक डियो इलाहाबाद, पृष्ठ-901
8. Hasamsh, D. Sankalia (1934), "The University of Nalanda" Paul & Co. Publishers, Madras, page-191

\*\*\*